अध्याय-१०

श्री साईबाबा का रहन-सहन, शयन पटिया, शिरडी में निवास, उनके उपदेश, उनकी विनयशीलता, नानावली, सुगम पथ।

प्रारम्भ

श्री साईबाबा का सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण करो, क्योंकि वे सदैव दूसरों के कल्याणार्थ तत्पर तथा आत्मलीन रहते थे। उनका स्मरण करना ही जीवन और मृत्यु की पहेली हल करना है। साधनाओं में यह अति श्रेष्ठ तथा सरल साधना है, क्योंकि इसमें कोई द्रव्य व्यय नहीं होता। केवल मामूली परिश्रम से ही भविष्य नितान्त फलदायक होता है। जब तक इन्द्रियाँ बलिष्ठ हैं, क्षण-क्षण इस साधना को आचरण में लाना चाहिए। अन्य सब देवी-देवता तो भ्रमित करने वाले हैं, केवल गुरु ही ईश्वर हैं। हमें उनके ही पवित्र चरणकमलों में श्रद्धा रखनी चाहिए। वे तो हर इन्सान के भाग्यविधाता और प्रेममय प्रभु हैं। जो अनन्य भाव से उनकी सेवा करेंगे, वे भवसागर से निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त होंगे। **न्याय अथवा मीमांसा या दर्शनशास्त्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार नदी या समुद्र पार करते समय नाविक पर विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार का विश्वास हमें भवसागर से पार होने के लिये सद्‌गुरु पर करना चाहिए।** सद्‌गुरु तो केवल भक्तों के भक्ति-भाव की ओर ही देखकर उन्हें ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करा देते हैं।

गत अध्याय में बाबा की भिक्षावृत्ति, भक्तों के अनुभव तथा अन्य विषयों का वर्णन किया गया है। अब पाठकगण जाने कि श्री साईबाबा किस प्रकार रहते, शयन करते और शिक्षा प्रदान करते थे।

बाबा का विचित्र बिस्तर

पहले हम यह देखेंगे कि बाबा किस प्रकार शयन करते थे। श्री नानासाहेब डेंगले एक चार हाथ लम्बा और एक हथेली चौड़ा लकड़ी का तख्ता श्री साईबाबा के शयन के हेतु लाये। तख्ता कहीं नीचे रख कर उस पर सोते, ऐसा न कर बाबा ने पुरानी चिन्दियों से मस्जिद की बल्ली से उसे झूले के समान बाँधकर उस पर शयन करना प्रारम्भ कर दिया।

चिन्दियों के बिल्कुल पतली और कमज़ोर होने के कारण लोगों को उसका झूला बनाना एक पहेली-सा बन गया। चिन्दियाँ तो केवल तख्ते का भी भार सहन नहीं कर सकती थीं। फिर वे बाबा के शरीर का भार किस प्रकार सहन कर सकेंगी? जिस प्रकार भी हो, यह तो राम ही जानें, परन्तु यह तो बाबा की एक लीला थी जो फटी चिन्दियाँ तख्ते तथा बाबा का भार सँभाल रही थीं। बाबा को तख्ते पर बैठे या शयन करते हुए देखना, देवताओं को भी दुर्लभ दृश्य था। सब आश्चर्यचकित थे कि बाबा किस प्रकार तख्ते पर चढ़ते होंगे और किस प्रकार नीचे उतरते होंगे। कौतूहलवश लोग इस रहस्योद्घाटन के हेतु दृष्टि लगाये रहते थे, परंतु यह समझने में कोई भी सफल न हो सका और इस रहस्य को जानने के लिये भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इस कारण बाबा ने एक दिन तख्ता तोड़कर बाहर फेंक दिया। यद्यपि बाबा को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी उनका प्रयोग नहीं किया और न कभी उनकी ऐसी इच्छा ही हुई। वे तो स्वतः ही स्वाभाविक रूप से पूर्णता प्राप्त होने के कारण उनके पास आ गई थीं।

ब्रह्म का सगुण अवतार

बाह्यदृष्टि से श्री साईबाबा साढ़े तीन हाथ लम्बे एक सामान्य पुरुष थे, फिर भी प्रत्येक के हृदय में वे विराजमान थे। अंदर से वे आसक्ति-रहित और स्थिर थे, परन्तु बाहर से जन-कल्याण के लिये सदैव चिन्तित रहते थे। अंदर वे संपूर्ण रूप से निःस्वार्थी थे। भक्तों के निमित्त उनके हृदय में परम शांति विराजमान थी, परन्तु बाहर से वे अशान्त प्रतीत होते थे। वे भीतर से ब्रह्मज्ञानी, परन्तु बाहर से संसार में उलझे

हुए दिखलाई पड़ते थे। वे कभी प्रेमदृष्टि से देखते तो कभी पत्थर मारते, कभी गालियाँ देते और कभी हृदय से लगाते थे। वे गम्भीर, शान्त और सहनशील थे। वे सदा दृढ़ और आत्मलीन रहते थे और अपने भक्तों का सदैव उचित ध्यान रखते थे। वे सदा एक आसन पर ही विराजमान रहते थे। वे कभी यात्रा को नहीं निकले। उनका दंड एक छोटी सी लकड़ी थी, जिसे वे सदैव अपने पास सँभाल कर रखते थे। विचारशून्य होने के कारण वे शान्त थे। उन्होंने कंचन और कीर्त्ति की कभी चिन्ता नहीं की तथा सदा ही भिक्षावृत्ति द्वारा निर्वाह करते रहे। उनका जीवन ही इस प्रकार का था। ''अल्लाह मालिक'' सदैव उनके होठों पर रहता था। उनका भक्तों पर विशेष और अटूट प्रेम था। वे आत्म-ज्ञान की खान और परम दिव्यस्वरूप थे। श्री साईबाबा का दिव्यस्वरूप इस तरह का था। एक अपरिमित, अनंत, सत्य और अपरिवर्तनशील सिद्धांत, जिसके अन्तर्गत यह सारा विश्व है, श्री साईबाबा में आविर्भूत हुआ था। यह अमूल्य निधि केवल सत्त्वगुण-सम्पन्न और भाग्यशाली भक्तों को ही प्राप्त हुई। जिन्होंने श्री साईबाबा को केवल मनुष्य या सामान्य पुरुष समझा या समझते हैं, वे यथार्थ में अभागे थे या हैं।

श्री साईबाबा के माता-पिता तथा उनकी जन्मतिथि का ठीक-ठीक पता किसी को भी नहीं है तो भी उनके शिरडी में निवास के द्वारा इसका अनुमान लगाया जा सकता है। जब पहलेपहल बाबा शिरडी में आए थे तो उस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष की थी। वे शिरडी में ३ वर्ष तक रहने के बाद फिर कुछ समय के लिये अन्तर्धान हो गए। कुछ काल के उपरान्त वे औरंगाबाद के समीप (निजाम स्टेट) में प्रकट हुए और चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः शिरडी पधारे। उस समय उनकी आयु २० वर्ष की थी। उन्होंने लगातार ६० वर्षों तक शिरडी में वास किया और सन् १९१८ में महासमाधि ग्रहण की। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनकी जन्म-तिथि सन् १८३८ के लगभग थी।

बाबा का ध्येय और उपदेश

सत्रहवीं शताब्दी (१६०८-१६८१) में सन्त रामदास प्रकट हुए और

उन्होंने यवनों से गायों और ब्राह्मणों की रक्षा करने का कार्य सफलतापूर्वक किया। परन्तु दो शताब्दियों के व्यतीत हो जाने के बाद हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ गया और इसे दूर करने के लिये ही श्री साईबाबा प्रगट हुए। उनका सभी के लिये यही उपदेश था कि ''राम (जो हिन्दुओं का भगवान् है) और रहीम (जो मुसलमानों का खुदा है) एक ही हैं और उनमें किंचित् मात्र भी भेद नहीं है। फिर तुम उनके अनुयायी क्यों पृथक्-पृथक् रहकर परस्पर झगड़ते हो? अज्ञानी बालकों! दोनों जातियाँ एकता साध कर और एक साथ मिलजुलकर रहो। शांत चित्त से रहो और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता का ध्येय प्राप्त करो। कलह और विवाद व्यर्थ है। इसलिये न झगड़ो और न परस्पर प्राणघातक ही बनो। सदैव अपने हित तथा कल्याण का विचार करो। श्रीहरि तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। योग, वैराग्य, तप, ज्ञान आदि ईश्वर के समीप पहुँचने के मार्ग हैं। यदि तुम किसी तरह सफल साधक नहीं बन सकते तो तुम्हारा जन्म व्यर्थ है। तुम्हारी कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, तुम उसका प्रतिकार न करो। यदि कोई शुभ कर्म करने की इच्छा है तो सदैव दूसरों की भलाई करो।''१

संक्षेप में यही श्री साईबाबा का उपदेश है कि उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करने से भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में तुम्हारी प्रगति होगी।

सच्चिदानंद सद्गुरु श्री साईनाथ महाराज

गुरु तो अनेक हैं। कुछ गुरु ऐसे हैं, जो द्वार-द्वार हाथ में वीणा और करताल लिये अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन करते फिरते हैं। वे शिष्यों के कानों में मंत्र फूँकते और उनकी सम्पत्ति का शोषण करते हैं। वे ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता का केवल ढोंग ही रचते हैं। वे वस्तुतः अपवित्र और अधार्मिक होते हैं। श्री साईबाबा ने धार्मिक निष्ठा प्रदर्शित करने का विचार भी कभी मन में नहीं किया। दैहिक बुद्धि उन्हें

---

१. अष्टादश पुराणेषुव्यासस्य वचनं द्वयं।
परोपकाराः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥
''परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'' - तुलसी

किंचित्मात्र भी छू न गई थी। परन्तु उनमें भक्तों के लिए असीम प्रेम था। गुरु दो प्रकार के होते हैं :- (१) नियत और(२) अनियत। अनियत गुरु के आदेशों से अपने में उत्तम गुणों का विकास होता तथा चित्त की शुद्धि होकर विवेक की वृद्धि होती है। वे भक्ति-पथ पर लगा देते हैं। परन्तु नियत गुरु की संगति मात्र से द्वैत बुद्धि का ह्रास शीघ्र हो जाता है। गुरु और भी अनेक प्रकार के होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की सांसारिक शिक्षाएँ प्रदान करते हैं। यथार्थ में जो हमें आत्मस्थित बनाकर इस भवसागर से पार उतार दे, वही सद्गुरु है। श्री साईबाबा उसी कोटि के सद्गुरु थे। उनकी महानता अवर्णनीय है। जो भक्त बाबा के दर्शनार्थ आते, उनके प्रश्न करने के पूर्व ही बाबा उनके समस्त जीवन की त्रिकालिक घटनाओं का पूरा-पूरा विवरण कह देते थे। वे समस्त भूतों में ईश्वर-दर्शन किया करते थे। मित्र और शत्रु उन्हें दोनों एक समान थे। वे नि:स्वार्थी तथा दृढ़ थे। भाग्य और दुर्भाग्य का उन पर कोई प्रभाव न था। वे कभी संशयग्रस्त नहीं हुए। देहधारी होकर भी उन्हें देह की किंचित्मात्र आसक्ति न थी। देह तो उनके लिए केवल एक आवरण मात्र था। यथार्थ में तो वे नित्य मुक्त थे।

वे शिरडीवासी धन्य हैं, जिन्होंने श्रीसाईबाबा की ईश्वर-रूप में उपासना की। सोते-जागते, खाते-पीते, वाड़े या खेत तथा घर में अन्य कार्य करते हुए भी वे लोग सदैव उनका स्मरण तथा गुणगान करते थे। साईबाबा के अतिरिक्त दूसरा कोई ईश्वर वे मानते ही न थे। शिरडी की नारियों के प्रेम की माधुरी का तो कहना ही क्या है! वे बिल्कुल भोलीभाली थीं। उनका पवित्र प्रेम उन्हें ग्रामीण भाषा में भजन रचने की सदैव प्रेरणा देता रहता था। यद्यपि वे शिक्षित न थीं तो भी उनके सरल भजनों में वास्तविक काव्य की झलक थी। यह कोई विद्वत्ता न थी, वरन् उनका सच्चा प्रेम ही इस प्रकार की कविता का प्रेरक था। कविता तो सच्चे प्रेम का प्रगट स्वरूप ही है, जिसमें चतुर श्रोता-गण ही यथार्थ दर्शन या रसिकता का अनुभव करते हैं।

बाबा की विनयशीलता

ऐसा कहते हैं कि भगवान् में छ: प्रकार के विशेष गुण होते हैं -

यथा (१) कीर्त्ति (२) श्री (३) वैराग्य (४) ज्ञान (५) ऐश्वर्य और (६) उदारता। श्री साईबाबा में भी ये सब गुण विद्यमान थे। उन्होंने भक्तों की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही सगुण अवतार धारण किया था। उनकी कृपा (दया) बड़ी ही विचित्र थी। भक्तों के हेतु वे अपने श्रीमुख से ऐसे वचन कहते, जिनका वर्णन करने का सरस्वती भी साहस न कर सकतीं। उनमें से यहाँ पर एक रोचक नमूना दिया जाता है। बाबा अति विनम्रता से इस प्रकार बोलते ''दासानुदास, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।'' कैसी विनम्रता है?

यद्यपि बाह्य दृष्टि से बाबा विषय-पदार्थों का उपभोग करते हुए प्रतीत होते थे, परन्तु उन्हें किंचित्मात्र भी उनकी गन्ध न थी और न ही उनके उपभोग का ज्ञान था। वे खाते अवश्य थे, परन्तु उनकी जिह्वा को कोई स्वाद न था। वे नेत्रों से देखते थे, परन्तु उस दृश्य में उनकी कोई रुचि न थी। काम के सम्बन्ध में वे हनुमान सदृश अखंड ब्रह्मचारी थे। उन्हें किसी पदार्थ में आसक्ति न थी। वे शुद्ध चैतन्य स्वरूप थे, जहाँ समस्त इच्छाएँ, अहंकार और अन्य चेष्टाएँ विश्राम पाती थीं। संक्षेप में वे निःस्वार्थ, मुक्त और पूर्ण ब्रह्म थे। इस कथन को समझने के हेतु एक रोचक कथा का उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

नानावली

शिरडी में नानावली नाम का एक विचित्र और अनोखा व्यक्ति था। वह बाबा के सब कार्यों की देखभाल किया करता था। एक समय जब बाबा गादी पर विराजमान थे, वह उनके पास पहुँचा। वह स्वयं ही गादी पर बैठना चाहता था। इसलिये उसने बाबा को वहाँ से हटने को कहा। बाबा ने तुरन्त गादी छोड़ दी और तब नानावली वहाँ विराजमान हो गया। थोड़े समय वहाँ बैठकर वह उठा और बाबा को अपना स्थान ग्रहण करने को कहा। बाबा पुनः आसन पर बैठ गए। यह देखकर नानावली उनके चरणों पर गिर पड़ा। इस प्रकार अनायास ही आज्ञा दिये जाने और वहाँ से उठाये जाने के कारण बाबा में किंचित्मात्र भी अप्रसन्नता की झलक न थी।

सुगम पथ, सन्तों की कथाओं का श्रवण करना और उनका

समागम

यद्यपि बाह्य दृष्टि से श्री साईबाबा का आचरण सामान्य पुरुषों के सदृश ही था, परन्तु उनके कार्यों से उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता और चतुराई स्पष्ट ही प्रतीत होती थी। उनके समस्त कर्म भक्तों की भलाई के निमित्त ही होते थे। उन्होंने कभी भी अपने भक्तों को किसी आसन या प्राणायाम के नियमों अथवा किसी उपासना का आदेश कभी नहीं दिया और न उनके कानों में कोई मन्त्र ही फूँका। उनका तो सभी के लिये यही कहना था कि **चातुर्य त्याग कर सदैव 'साई साई' स्मरण करो। इस प्रकार आचरण करने से समस्त बन्धन छूट जाएँगे और तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जाएगी।** पंचाग्नि, तप, त्याग, स्मरण, अष्टांग योग आदि का साध्य होना केवल ब्राह्मणों को ही सम्भव है।

मन का कार्य विचार करना है। बिना विचार किये वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि तुम उसे किसी विषय में लगा दोगे तो वह उसी का चिन्तन करने लगेगा और यदि उसे गुरु को अर्पण कर दोगे तो वह गुरु के सम्बन्ध में ही चिन्तन करता रहेगा। आप लोग बहुत ध्यानपूर्वक साई की महानता और श्रेष्ठता श्रवण कर चुके हैं। ये कथाएँ सांसारिक भय को निर्मूल कर आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ करती हैं। इसलिये इन कथाओं का हमेशा श्रवण और मनन करो तथा आचरण में भी लाओ। सांसारिक कार्यों में लगे रहने पर भी अपना चित्त साई और उनकी कथाओं में लगाये रहो। तब तो यह निश्चित है कि वे कृपा अवश्य करेंगे। यह मार्ग अति सरल होने पर भी क्या कारण है कि सब कोई इसका अवलम्बन नहीं करते? कारण केवल यह है कि ईश-कृपा के अभाववश लोगों में सन्त कथाएँ श्रवण करने की रुचि उत्पन्न नहीं होती। ईश्वर की कृपा से ही प्रत्येक कार्य सुचारु एवं सुंदर ढंग से चलता है। सन्तों की कथा का श्रवण ही सन्तसमागम सदृश है। सन्त-सान्निध्य का महत्व अति महान् है। उससे दैहिक बुद्धि, अहंकार और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति हो जाती है। हृदय की समस्त ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और ईश्वर से मिलन हो जाता है, जो चैतन्यघन स्वरूप है। विषयों से निश्चय ही विरक्ति बढ़ती है तथा दुःखों और सुखों में स्थिर रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और

आध्यात्मिक उन्नति सुलभ हो जाती है। यदि तुम कोई साधन जैसे नामस्मरण, पूजन या भक्ति इत्यादि नहीं करते, परन्तु अनन्य भाव से केवल सन्तों के ही शरणागत हो जाओ तो वे तुम्हें आसानी से भवसागर के पार उतार देंगे। इसी कार्य के निमित्त ही सन्त विश्व में प्रगट होते हैं। पवित्र नदियाँ - गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि जो संसार के समस्त पापों को धो देती हैं, वे भी सदैव इच्छा करती हैं कि कोई महात्मा अपने चरण-स्पर्श से हमें पावन करे। ऐसा सन्तों का प्रभाव है। गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही श्री साई चरणों की प्राप्ति संभव है।

मैं श्री साई के मोह-विनाशक चरणों का ध्यान कर यह अध्याय समाप्त करता हूँ। उनका स्वरूप कितना सुन्दर और मनोहर है! मस्जिद के किनारे पर खड़े हुए वे सब भक्तों को, उनके कल्याणार्थ उदी वितरण किया करते थे। जो इस विश्व को मिथ्या मानकर सदा आत्मानंद में निमग्न रहते थे, ऐसे सच्चिदानंद श्री साईमहाराज के चरणकमलों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥